International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 6 Issue 4, May-June 2022 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

2013 में मानवाधिकार भारत के विशेष सन्दर्भ में

Dr. Deep Kumar Srivastava

Associate Professor, Department of Defence Studies S.M. College, Chandausi, Uttar Pradesh, India

ABSTRACT

देश के विशाल आकार और विविधता, विकासशील तथा सम्प्रभुता सम्पन्न पन्थनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणतन्त्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा, तथा एक भूतपूर्व औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप भारत में मानवाधिकारों की परिस्थिति एक प्रकार से जटिल हो गई है। भारत का संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जिसमें धर्म की स्वतन्त्रता भी अन्तर्भूक्त है। संविधान की धाराओं में बोलने की आजादी के साथ-साथ कार्यपालिका और न्यायपालिका का विभाजन तथा देश के अन्दर एवं बाहर आने-जाने की भी स्वतन्त्रता दी गई है।

यह अक्सर मान लिया जाता है, विशेषकर मानवाधिकार दलों और कार्यकर्ताओं के द्वारा कि दलित अथवा अछूत जाति के सदस्य पीड़ित हुए हैं एवं लगातार पर्याप्त भेदभाव झेलते रहे हैं। हालाँकि मानवाधिकार की समस्याएँ भारत में मौजूद हैं, फिर भी इस देश को दक्षिण एशिया के दूसरे देशों की तरह आमतौर पर मानवाधिकारों को लेकर चिंता का विषय नहीं माना जाता है। विश्व रिपोर्ट 2013का विमोचन करते हुए ह्यूमन राइट्स वॉच ने कहा कि भारत में नागरिक समाज की सुरक्षा, महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा, और लंबे समय से उत्पीड़नों के लिए सरकारी अधिकारियों को जवाबदेह मानने में विफलता के कारण मानवाधिकारों की स्थिति गंभीर रूप लेते हुए बदतर हो गई है. हालांकि सरकार ने बच्चों को यौन उत्पीड़न से सुरक्षा के लिए नया कानून बनाने और अन्य देशों में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय प्रस्तावों का पुरजोर समर्थन करने सहित कुछ क्षेत्रों में प्रगति की है. अपनी 665पृष्ठों की रिपोर्ट में ह्यूमन राइट्स वॉच ने अरब स्प्रिंग के बाद की स्थिति के एक विश्लेषण सहित पिछले वर्ष के दौरान 90से अधिक देशों में मानवाधिकारों के मामले में हुई प्रगति का मूल्यांकन किया है.

How to cite this paper: Dr. Deep Kumar Srivastava "Human Rights in 2013 with Special Reference to India" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-6 | Issue-4, June 2022, pp.1045-1048, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd50265.pdf

IJTSRD50265

Copyright © 2022 by author(s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

ह्यूमन राइट्स वॉच ने कहा कि जब तक देश में दंड से छूट की परंपरा बनी रहती है, तब तक भारत के सुरक्षा बलों द्वारा किए जा रहे घोर उत्पीड़नों का अंत करने के प्रयास बाधित होते रहेंगे. सरकार ने उत्पीड़नकारी सशस्त्र सेना विशेष अधिकार अधिनियम (एएफएसपीए) को रद्द नहीं किया, जो गंभीर मानव अधिकार उल्लंघन करने वाले सैनिकों को प्रभावी छूट प्रदान करता है. 2013 में एक बार फिर हिरासत में यातना रोकने के लिए और यातना करने वाले को जवाबदेह मानने वाला कानून नहीं बनाया गया. ह्यूमन राइट्स वॉच ने कहा कि सरकार अभी भी अनेक मुद्दों पर आलोचकों को चुप कराने के लिए औपनिवेशिक काल के राजद्रोह कानून एवं अन्य कानूनों का उपयोग कर रही है. इनमें उसके द्वारा माओवादी उग्रवाद से लेकर दक्षिणी राज्य तमिलनाडु में एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र के विरोध प्रदर्शन से निपटना शामिल था. विरोध प्रदर्शित करने के लिए सोशल मीडिया के उपयोग के बारे में बढ़ती चिंताओं के कारण इंटरनेट की स्वतंत्रता पर नए प्रतिबंध लगाए गए. और सरकार ने घरेलू संगठनों को आर्थिक सहायता मिलने से रोकने के लिए विदेशी योगदान विनियमन अधिनियम का उपयोग करना जारी रखा. [1] ह्यूमन राइट्स वॉच की दक्षिण एशियाई निदेशक मीनाक्षी गांगुली ने कहा, "अभी भी भारत सरकार गैर-जिम्मेदार सुरक्षा बलों और दंड से मुक्ति वाले कानूनों के कारण होने वाले गंभीर नुकसान को नहीं मान रही है. जहां एक ओर शीर्ष अधिकारी अक्सर विकासशील लोकतंत्र के रूप में भारत के जीवंत एवं स्वतंत्र सिविल सोसायटी की चर्चा करते हैं, वहीं दूसरी ओर सरकार असंतोष को दबाने के लिए कठोर कानूनों का बढ़-चढ़ कर प्रयोग कर रही है.

ह्यूमन राइट्स वॉच ने कहा कि भारत के संघर्ष वाले क्षेत्रों में सरकार और विरोधी बलों दोनों ही के द्वारा उत्पीड़न किया गया. जहां एक ओर पिछले दो वर्षों से जम्मू और कश्मीर में हिंसा के स्तर में गिरावट दर्ज की गई है, वहीं दूसरी ओर इस विवादित राज्य में किसी भी चुनाव का विरोध करने वाले सशस्त्र अलगाववादी आतंकवादियों से मिली धमकियों एवं हमलों के कारण कई निर्वाचित ग्राम परिषदों के नेताओं ने इस्तीफा दे दिया. माओवादी विद्रोह वाले क्षेत्रों में ग्रामीणों को माओवादियों और राज्य सुरक्षा बलों, दोनों से ही खतरा बना रहा. पूर्वोत्तर राज्य मणिपुर में हिंसा जारी रही, जबकि असम में स्वदेशी बोडो जनजातियों और प्रवासी मुसलमान बाशिंदों के बीच हिंसा के कारण कम से कम 97लोग मारे गए और 450,000से अधिक

लोग विस्थापित हो गए. यौन उत्पीड़न की घटनाओं में वृद्धि के साथ-साथ महिलाओं के विरुद्ध हिंसा बेरोकटोक जारी रही. विश्व रिपोर्ट 2013 के प्रेस में जाने के बाद 16दिसंबर को नई दिल्ली में 23वर्षीया छात्रा के सामूहिक बलात्कार एवं बाद में उसकी मृत्यु की घटना के खिलाफ भारत भर के शहरों में बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन हुए. [2]

सुश्री गांगुली ने कहा कि "दिल्ली में सामूहिक बलात्कार पर वैश्विक निंदा से भारतीय नेतृत्व को यह संदेश जाना चाहिए कि वह यौन हिंसा के सभी स्वरूपों का अपराधीकरण करने और महिलाओं की गरिमा एवं अधिकारों की रक्षा करने के लिए बहुत समय से लंबित सुधारों को लाए. भारत के कानूनों को लागू करने हेतु जरूरी संसाधनों और उन अधिकारियों को जवाबदेह बनाने की तत्काल आवश्यकता है जो संवेदनशील तरीके से अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर रहे हैं.

पुलिस के द्वारा हिरासत में यातना और दुराचरण के खिलाफ राज्य की निषेधाज्ञाओं के बावजूद, पुलिस हिरासत में यातना व्यापक रूप से फैली हुई है, जो हिरासत में मौतों के पीछे एक मुख्य कारण है।पुलिस अक्सर निर्दोष लोगों को घोर यातना देती रहती है जबतक कि प्रभावशाली और अमीर अपराधियों को बचाने के लिए उससे अपराध "कबूल" न करवा लिया जाय. जी.पी. जोशी, राष्ट्रमंडल मानवाधिकारों की पहल की भारतीय शाखा के कार्यक्रम समन्वयक ने नई दिल्ली में टिप्पणी करते हुए कहा कि पुलिस हिंसा से जुड़ा मुख्य मुद्दा है पुलिस की जवाबदेही का अभी भी अभाव.[3]

वर्ष 2006 में, भारत के उच्चतम न्यायालय ने प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ के एक मामले में अपने एक फैसले में, केन्द्रीय और राज्य सरकारों को पुलिस विभाग में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के सात निर्देश दिए। निर्देशों के ये सेट दोहरे थे, पुलिस कर्मियों को कार्यकाल प्रदान करना तथा उनकी नियुक्ति/स्थानांतरण की प्रक्रिया को सरल और सुसंगत बनाना तथा पुलिस की जवाबदेही में इज़ाफा करना।

अपराध जाँच के लिए आक्रामक तरीके जैसेकि 'नार्कोअनालिसिस' (नियन्त्रित संज्ञाहरण) अर्थात अवचेतन में विश्लेषण की अब सामान्यतः भारतीय अदालतों ने अनुमति दी है। हालाँकि भारतीय संविधान के अनुसार "किसी को भी खुद उसी के विरुद्ध एक गवाह नहीं बनाया जा सकता है", अदालतों ने हाल ही में घोषणा की है कि यहाँ तक कि इस प्रयोग के संचालन के लिए अदालत से अनुमति आवश्यक नहीं है। अवचेतानावस्था में विश्लेषण (Narcoanalysis) का अब व्यापक रूप से प्रयोग प्रतिस्थापित/प्रवंचना के लिए किया जाता है अपराध जाँच के वैज्ञानिक तरीकों के संचालन के लिए कौशल और बुनियादी सुविधाओं की कमी है।अवचेतानावस्था में विश्लेषण (Narcoanalysis) पर भी चिकित्सा की नैतिकता के खिलाफ आरोप लगाया गया है।[4]

यह पाया गया है कि देश के आधे से अधिक कैदी पर्याप्त सबूत के बिना ही हिरासत में हैं। अन्य लोकतान्त्रिक देशों के विपरीत, आम तौर पर भारत में आरोपी की गिरफ्तारी के साथ ही जाँच की शुरूआत होती है। चूंकि न्यायिक प्रणाली में कर्मचारियों की कमी और सुस्ती है, अतः कई वर्षों से जेल में सड़ रहे निर्दोष नागरिकों का होना कोइ असामान्य बात नहीं है। उदाहरण के लिए, सितम्बर 2009 में मुम्बई उच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र सरकार से एक 40-वर्षीय व्यक्ति को मुआवजे के रूप में 1 लाख रुपये का भुगतान करने के लिए कहा क्योंकि जिस अपराध के लिए वह 10 साल से जेल में सजा काट रहा था दरअसल उसने वह अपराध किया ही नहीं था।[5]

विचार-विमर्श

गत नवंबर में, भारत में दांडिक न्याय एक कदम पीछे हटा जब सरकार ने फांसी न देने के आठ वर्षों के अघोषित स्थगन को खत्म करते हुए नवंबर, 2008 के मुंबई हमले के अभियुक्त पाकिस्तानी नागरिक अजमल कसाब को फांसी दे दी. कुछ राजनेताओं ने मौत की सजा पाए अन्य लोगों को भी फांसी देने के लिए फिर से आवाज उठाई तथा बलात्कारियों को फांसी देने की मांग की.

एक सकारात्मक कदम के रूप में संसद ने बच्चों की यौन-उत्पीड़न से सुरक्षा के लिए एक नया कानून पारित किया और सरकार ने 14वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों को जोखिम भरे कामों के अलावा भी कई उद्योगों में नौकरी पर रखने पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाने की इच्छा व्यक्त की. सरकार ने असाध्य रोगों के कारण पीड़ा एवं अन्य लक्षणों से जूझ रहे लाखों लोगों के कष्ट को कम करने के लिए चिकित्सा देखभाल केंद्रों, खासकर कैंसर उपचार केंद्रों में दर्दनिवारक देखभाल को बढ़ावा देने की दिशा में उल्लेखनीय कार्रवाई की.

गुजरात में वर्ष 2002के खूनी दंगों के अनेक संदिग्धों पर मुकदमा चलाए जाने के रूप में दंगे के कुछ पीड़ितों एवं पीड़ित परिवारों को अंततः न्याय मिला जिसके फलस्वरूप पिछले वर्ष 75से अधिक लोग दोषी करार दिए गए. इनमें एक उग्रवादी हिंदू संगठन बजरंग दल की नेता और पूर्व मंत्री माया कोडनानी को अपराधी सिद्ध किया जाना भी शामिल है.[6]

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, भारत ने अन्य देशों में मानवाधिकारों को बढ़ावा देने वाले संयुक्त राष्ट्र के अनेक प्रस्तावों का समर्थन किया, जिसमें से सबसे अधिक उल्लेखनीय श्रीलंका है. परंपरागत रूप से तथाकथित युद्ध अपराधों और अन्य उत्पीड़नों के लिए श्रीलंका सरकार की सार्वजनिक रूप से आलोचना करने से परहेज करने की पहले की नीति से हटते हुए भारत ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका में युद्ध के उपरांत सुलह एवं जवाबदेही के प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया. सीरिया के मामले में भी उसने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के उन प्रस्तावों के पक्ष में मतदान किया जो वहां बढ़ती हिंसा से संबद्ध थे.

सुश्री गांगुली ने कहा कि, "सार्वभौम मानवाधिकारों को समर्थन एवं सम्मान करने के भारत सरकार के दायित्वों को भारत की सीमाओं के भीतर ही नहीं रुक जाना चाहिए. भारत, विदेशों में पीड़ितों के पक्ष में दृढ़ता से आवाज उठाते हुए अपने देश में भी मानवाधिकारों की स्थिति में सुधार कर सकता है, और उसे करना भी चाहिए.[7]

जब तक दिल्ली हाई कोर्ट ने 2 जून 2009 को सम-सहमत वयस्कों के बीच सहमति-जन्य निजी यौनकर्मों को गैरआपराधिक नहीं मान लिया तबतक 150 वर्ष पुरानी भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की अस्पष्ट धारा 377, औपनिवेशिक ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा पारित कानून की व्याख्या के अनुसार समलैंगिकता को अपराधी माना जाता था। बहरहाल, यह कानून

यदा-कदा ही लागू किया जाता रहा। समलैंगिकता को गैरापराधिक करार करार करने के अपने आदेश में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि मौजूदा कानून भारतीय संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के साथ प्रतिद्वन्द्व पैदा करती है और इस तरह के अपराधीकरण संविधान की धारा 21, 14 और 15 का उल्लंघन करते हैं।दिसंबर 11 , 2013 को समलैंगिकता को एक बार फिर सुप्रीम कोर्ट के फैसले से आपराध माना गया।[8]

परिणाम

संपूर्ण विश्व में मानवाधिकारों का महत्व को ध्यान में रखते हुए, संयुक्त राष्ट्र चार्टर में यह स्पष्ट कथन किया गया था कि लोग यह विश्वास करते हैं कि मानव गरिमा और स्त्री-पुरुष के सामान अधिकार आदि कुछ ऐसे मानवाधिकार हैं जो कभी छीने नहीं जा सकते हैं। इस घोषणा के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसंबर 1948 को मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा अंगीकार की। इस घोषणा में न सिर्फ मनुष्य जाति के अधिकारों को स्थान दिया गया बल्कि स्त्री-पुरुषों को भी सामान अधिकार दिए गए। इस घोषणा से सभी राष्ट्रों को प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। जिससे वे इन अधिकारों को अपने संविधान या अधिनियमों के द्वारा मान्यता देने और क्रियान्वित करने की दिशा में अग्रसर हुए। मानव अधिकारों को पहचान देने और इन अधिकारों के अस्तित्व के लिए किये जाने वाले संघर्ष को सशक्त करने के उद्देश्य से प्रत्येक 10 दिसंबर को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र ने इस दिन को मानवाधिकारों की रक्षा और उसे बढ़ावा देने के लिए तय किया। मानवता के खिलाफ होने वाले अत्याचार को रोकने और उसके विरुद्ध संघर्ष को नया आयाम देने में मानवाधिकार दिवस की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में 28 सितम्बर 1993 से मानवाधिकार कानून लागू किया गया और 12 अक्टूबर 1993 में सरकार ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया। भारत के संविधान में भी मानव अधिकारों को पर्याप्त मान्यता देते हुए मानवाधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र को प्रत्याभूत किया गया है और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण के दृष्टिकोण से तथा मौलिक अधिकारों के रूप में प्रतिष्ठापूर्ण और गरिमामयी माहौल में जीवन जीने के अधिकार प्रदान करने की गारंटी दी गयी है।[9]

मानव अधिकारों एवं मूल अधिकारों के मध्य शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है। भारतीय संविधान में न सिर्फ मानवाधिकारों की गारंटी दी गयी है बल्कि इसका उल्लंघन करने पर सजा का भी प्रावधान किया गया है। भारतीय संविधान का उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना था जो विधि संगत होने के साथ ही मानव हित में भी हो। जिसके अंतर्गत समस्त देशवासियों को बिना किसी भेदभाव के समान अवसर, शांति, और सुरक्षा के वातावरण में गरिमामयी रूप से जीने का अधिकार मिल सके।

भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों में धर्म की स्वतंत्रता अंतर्भुक्त है। ये अधिकार भारतीय न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। भारतीय न्यायालयों द्वारा मानवाधिकारों की सक्रीय रूप से रक्षा करने की बात भी स्वीकार की गयी है। इस प्रकार अनेकों न्यायिक दृष्टान्त भी जीवन की स्वतंत्रता, समता, गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार आदि मौलिक अधिकारों एवं मानव अधिकारों के प्रतिबिंबित उदाहरण हैं। वास्तव में मानवीय जीवन और अधिकारों की रक्षा किसी देश के मानवाधिकार कानूनों के लिए गौरवान्वित करने वाली बात है। वर्तमान में हमारे देश में मानवाधिकारों की स्थिति वास्तव में जटिलता में देखी जा रही है। मानवाधिकारों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसका हनन राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त धार्मिक मुद्दों पर भी किया जा रहा है। प्रत्येक जाति वर्ग को पारस्परिक सहिष्णुता की भावना के साथ प्रेम और स्नेह के मार्ग पर चलने का सन्देश देने के नाम पर कट्टरता का प्रचार करते हुए हिंसा का बढ़ावा दिया जा रह है। भले ही मानवाधिकारों का चिंतन करने के नाम पर आतंकवाद और नक्सलवाद इसके सबसे बड़े शत्रु दिखाई पड़ते हैं किन्तु वास्तव में इसका दूसरा पक्ष अशिक्षा के रूप में भी समाज के समक्ष परिलक्षित होता है। यही कारण है की आम लोग शिक्षा का अभाव होने से मानवाधिकारों के हनन किये जाने पर उसका विरोध भी नहीं कर पाते हैं।[10]

भारत के विशाल आकार और विविधता, संप्रभुता संपन्न, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतन्त्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा तथा भूतपूर्व औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप इसकी स्थिति जटिल हो गयी है। यद्दपि भारत में दक्षिण एशिया के अन्य देशों की भांति आमतौर पर मानवाधिकारों को लेकर चिंता का विषय नहीं माना जाता है। मानवाधिकारों के उल्लंघन के दृष्टिकोण से पुलिस हिरासत में यातना व्यापक रूप से परिलक्षित होती है। आज भी पुलिस की जवाबदेही का मुद्दा एक गंभीर प्रश्न बना हुआ है। हालाँकि वर्ष 2006 में मा० उच्चतम न्यायालय ने प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ के मामले में अपने एक फैसले में केंद्र और राज्य सरकारों को पुलिस विभाग में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के सात निर्देश दिए है। अगर भारत में मानवाधिकारों की बात की जाये तो यह प्रायः यह प्रतीत होता है की यहाँ आज भी एक खास तबके के लोगों को ही हैसियत के अनुसार मानवाधिकार मिल पाते हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान आदि राज्यों में जहाँ साक्षरता का स्तर थोड़ा काम है वहां मानवाधिकारों का हनन आम बात है। इन राज्यों के पिछड़े और अशिक्षित क्षेत्रों में प्रायः बेक़सूर और गरीब लोगों पर पुलिस और प्रशासन द्वारा अमानवीय तरीके से कानूनी कार्यवाही करने अथवा अन्य तरीके से शोषण किये जाने की घटनाएँ चर्चा में बनी रहती हैं लेकिन इसके विपरीत जिन शहरों में लोग साक्षर हैं वहां इसका गलत इस्तेमाल भी करते हैं।

निष्कर्ष

मानवाधिकार एक ऐसा विषय है जो सभी सामाजिक विषयों में सबसे गंभीर है। जिस पर हम एक पक्षीय विचार नहीं कर सकते हैं किन्तु अपने राजनीतिक या स्वार्थपरक अथवा अन्य दुर्भावनापूर्ण उद्धेश्यों की पूर्ति हेतु मानवाधिकारों का सहारा लेना बिलकुल गलत है। इसे ऐसे समझा जा सकता है कि क्या किसी ऐसे हत्यारे या आतंकवादी का कोई मानवाधिकार हो सकता है जो हजारों मासूमों की जिंदगी तबाह करने का दोषी हो और अगर ऐसे आतंकवादी का मानवाधिकार है तो क्या उन लोगों के मानवाधिकारों का कोई अस्तित्व है जो इन असामाजिक तत्वों का शिकार बनते हैं। जहाँ तक आतंकवादियों और अपराधियों के मानवाधिकारों की बात है तो उचित नहीं लगता है किन्तु जब इन्हीँ अपराधियों के साये में कोई निर्दोष फंस जाता है या किसी घटना की वास्तविकता का पता लगाने के लिए

गैरकानूनी या अमानवीय रूप से किसी निर्दोष को शारीरिक या मानसिक यातना दी जाती है तो स्वतः ही मानवाधिकारों के महत्व और आवश्यकता का अहसास होता है।[11]

आज पूरे विश्व में ताकत और पैसे के बल पर होने वाली हिंसा इस बात का प्रत्यक्ष सबूत है कि मानवता खतरे में है। हालात ऐसे हैं कि यदि मानव पर कोई सामाजिक और विधिक नियंत्रण न हो तो वह खुद की श्रेष्ठता साबित करने के लिए मरने मारने को तैयार नज़र आएगा। वास्तव में आज दुनिया में संपन्न और शक्तिशाली लोगों के बीच यदि आम जनता सुरक्षित ढंग से रह पा रही है तो उसका एकमात्र कारण सबको मिलने वाला तथाकथित मानवाधिकार है। यूँ तो मानवाधिकार सबके लिए समान है किन्तु इसका वास्तविक लाभ उसे ही मिल पता है जिसके पास पर्याप्त जानकारी, सामर्थ्य अथवा संसाधन उपलब्ध हैं।

प्रकृति के अलावा मनुष्यों द्वारा बनाये गए विधि सम्मत कानून का भी यह कर्त्तव्य है कि वह मानवाधिकारों की रक्षा करें। हमारे मानव समाज में मानवाधिकारों के प्रति सचेतता आम लोगों में विशेष रूप से दिखाई नहीं पड़ती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश में आये दिन घटित होने वाली महिलाओं के शारीरिक और मानसिक शोषण और प्रताड़ना की घटनाएँ, प्रतिदिन होने वाली हजारों भ्रूण हत्याएं भारतीय संस्कृति की गरिमा तार-तार करती हैं। भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, शारीरिक प्रताड़ना और मानसिक उत्पीड़न आदि अत्याचारों से पीड़ित महिलाओं के विषय में मानवाधिकारों की आवश्यकता को रेखांकित करते ही हमारा समाज प्रायः मौन हो जाता है। ऐसे ही सैकड़ो वर्षों से वनों अथवा उसके आस-पास के क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासी और वनवासी समाज के परंपरागत अधिकारों और मानव अधिकारों की समुचित रूप से पहचान तक नहीं की जा सकी है तथा उन्हें आज तक चकबंदी, सीलिंग, पट्टे भू-अभिलेख या भूमि आवंटन का पर्याप्त लाभ नहीं मिल सका है।

वास्तव में मानव समाज में मौजूद समस्याओं का निराकरण करना ही मानवाधिकार की संकल्पना का लक्ष्य है। सूखा, बाढ़, गरीबी, अकाल, सुनामी, भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाओं और युद्ध एवं दुर्घटनाओं आदि से पीड़ित व्यक्तियों को राहत और पुनर्वास के मानवाधिकारों का ध्यान रखा जाना अपेक्षित है। जिससे लोगों की वाक्-अभिव्यक्ति और धार्मिक स्वतंत्रता एवं भय तथा अभाव मुक्त एक ऐसी विश्व व्यवस्था की उस स्थापना की जनसाधारण की सर्वोच्च आकांक्षा पूर्ण हो सके क्योंकि सम्पूर्ण मानव समाज के सभी सदस्यों के जन्मजात गौरव और समान अविच्छिन्न अधिकार की स्वीकृति ही विश्व शांति, न्याय और स्वतंत्रता की बुनियाद है। यद्दपि किसी भी प्रकार के अन्याय और अत्याचार तथा अत्याचार के विरुद्ध हिंसक विद्रोह से मानव समाज को बचाने के लिए कानून द्वारा नियम बनाकर मानव अधिकारों की रक्षा करना श्रेष्ठ उपाय सिद्ध हो सकता है किन्तु मानव अधिकारों सम्बन्धी घोषणाओं के वास्तविक क्रियान्वयन की आवश्यकता है। जिससे मानव अधिकार सम्बन्धी घोषणा-पत्र सिर्फ दस्तावेज बनकर न रह जाएँ। वास्तव में इसी में मानवाधिकारों की सार्थकता निहित है। यद्दपि हमारे देश की सरकार मानवाधिकारों के प्रति सजग है किन्तु इस सजगता में और अधिक धार लाने की आवश्यकता है।[12]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार और उसकी रक्षा प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य बनकर सार्वभौमिक सत्यता का सूत्रपात कर रहा है। समसामयिक दृष्टिकोण से मानवाधिकारों का सम्मान गंभीर चिंतन का विषय बना हुआ है। परस्पर सदभाव द्वारा ही हम मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अपनी ओर से गारंटी दे सकते हैं।

संदर्भ

[1] रमा शर्मा व एम. के. मिश्रा: भारतीय समाज में नारी- अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2010

[2] डा. मंजुलता छिल्लर: भारतीय नारी शोषण के बदलते आयाम- अर्जुन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 2010

[3] डा. प्रज्ञा शर्मा: भारतीय समाज में नारी- पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001

[4] रमा शर्मा व एम. के. मिश्रा: महिला विकास- अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2010

[5] डा. वीरेन्द्र सिंह यादव: नई सहस्त्राब्दी का महिला सशक्तीकरण-अवधारणा, चिन्तन एवं सरोकार भाग 1 एवं 2, ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010

[6] डा. बी.एल. फाड़िया: लोक प्रशासन एवं शोध प्रविध- साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2007

[7] डा. एम. के. जैन: शोध विधियां- यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009

[8] डा. एम.एस अंसारी: शिक्षण एवं शोध अभियोग्यता- रमेश पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, दिसम्बर 2009

[9] कम्पेंडियम जनरल नॉलेजः 2011

[10] प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी: भारत में मानवाधिकार, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008

[11] आशा कौशिक: मानवाधिकार और राज्यः बदलते संदर्भ, उभरते आयाम- पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2004

[12] डा. सुरेन्द्र कटारिया: भारतीय लोक प्रशासन- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2005